राष्ट्रीय नीति दस्तावेजों में मूल्यांकन

राजाराम भादू

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या की परिभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, अगर वे स्कूली प्रणाली में जड़ें जमाए मूल्यांकन और परीक्षा तंत्र के अवरोध से नहीं जूझ सकते। भारत के संघीय ढांचे में शिक्षा समवर्ती सूची में है अर्थात् शिक्षा के प्रसार और प्रशासन को लेकर केन्द्र व राज्य- दोनों सरकारें- विधि और नीति निर्माण कर सकती हैं। यहां हम भारत सरकार द्वारा समय-समय पर जारी नीति-दस्तावेजों में शैक्षिक आकलन, मूल्यांकन और परीक्षा को लेकर दी गई अनुशंसाओं और प्रस्तावित की गई रणनीतियों का एक संक्षिप्त पुनरावलोकन प्रस्तुत कर रहे हैं। सामान्यतः विभिन्न राज्यों द्वारा भी इन्हीं नीतियों और प्रस्तावों का अनुकरण करने का प्रयास किया गया है। इसलिए शैक्षिक मूल्यांकन पर विचार-विमर्श में यह संदर्भ प्रासंगिक हो सकता है।

मुदालियार आयोग

भारत में शिक्षा पर गठित मुदालियार आयोग (1952-53) ने अनेक महत्त्वपूर्ण अभिशंसाएं दी थीं। आयोग ने शैक्षिक मूल्यांकन और परीक्षाओं पर भी विचार किया था। इस संदर्भ में इसकी सिफारिशें एक तरह से प्रस्थान बिन्दु हैं क्योंकि हम इन्हें आगे भी बच्चों के आकलन संबंधी विमर्श में किसी न किसी रूप में विकसित होते या दोहराए जाते देखते हैं।

मुदालियार आयोग आंतरिक और बाह्य दोनों तरह की परीक्षाओं पर विचार करता है। इसमें स्कूल के अन्दर सत्र परीक्षाओं की बात भी की गई है। लेकिन सुझाया गया है कि बाह्य परीक्षा स्कूल पढ़ाई के आखिरी चरण में ही आयोजित की जानी चाहिए। सार्वजनिक परीक्षा के महत्त्व को स्वीकारते हुए आयोग कहता है कि हमारी शिक्षा प्रणाली बुरी तरह से परीक्षा आक्रांत है।

सार्वजनिक परीक्षा की सीमाओं को चिह्नित करते हुए मुदालियार आयोग मानता है कि यह बच्चे के विकास के सभी पहलुओं को नहीं समेटती। आयोग रेखांकित करता है कि बीसवीं शताब्दी में शिक्षा का अर्थ और संभावनाएं बहुत विस्तृत हो गए हैं। ऐसे में परीक्षा के वास्तविक मूल्य को स्थापित करने के लिए इसमें गुणात्मक बदलाव करने की आवश्यकता है। आयोग इस संदर्भ में 'परीक्षाओं की परीक्षा' पर हार्टोग रिर्पोट का हवाला देते हुए कहता है कि परीक्षा तो ठीक से बच्चे के बौद्धिक विकास का भी आकलन नहीं कर पाती। आयोग ने परीक्षा से स्कूल की संबद्धता पर बहुत जोर दिया है। साथ ही परीक्षाओं के नोट्स और कुंजी आधारित होने पर गंभीर चिंता जताई है।

मुदालियार आयोग का मानना है कि परीक्षाओं में जोर दिखने और मापी जा सकने वाली बौद्धिक क्षमताओं पर होता है। जबकि बेहतर शिक्षा बच्चे के बौद्धिक, सामाजिक और सर्वांग विकास में मददगार होती है। इसमें शिक्षक के दीर्घकालिक और बहु-आयामी प्रयास शामिल होते हैं, जिन्हें परीक्षा नहीं समेट पाती। आयोग परीक्षा परिणाम पर आधारित स्कूल की सफलता की तुलना किसी औद्योगिक घराने के लाभ-हानि के खाते से करते हुए इसकी गुणवत्ता पर प्रश्न-चिह्न लगाता है। परीक्षा ने पाठ्यचर्या से चुनाव करने की एक ऐसी संकीर्ण दृष्टि बच्चों और शिक्षकों में विकसित की है जिसने शिक्षा का अवमूल्यन किया है। इससे औसत छात्रों की संख्या बढ़ी है। संभवतः मुदालियार आयोग ने पहली बार बच्चों के स्वतंत्र अध्ययन के स्थान पर उन्हें तथ्य रटाने (स्पून फीड) जैसी प्रवृत्ति की पहचान कर उसे चिंता के केन्द्र में रखा।

मुदालियार आयोग प्रस्तावित करता है कि कई बाह्य परीक्षाओं के स्थान पर माध्यमिक शिक्षा में सिर्फ एक परीक्षा होनी चाहिए। आयोग निबंधात्मक प्रश्नों को कम करके वस्तुपरक प्रश्नों को बढ़ाने का प्रस्ताव करता है। आयोग समझ और चिंतन को अभिव्यक्त करने वाले प्रश्नों पर जोर देता है। स्कूली शिक्षा में आंतरिक परीक्षणों की अहमियत प्रतिपादित करते हुए आयोग ने बच्चे के प्रगति प्रतिवेदन को महत्ता प्रदान की है। इस प्रतिवेदन में बच्चे की रुचियों, दृष्टिकोण, वैयक्तिक प्रवृत्ति और उसके सामाजिक रुझानों का क्रमिक लेखा-जोखा रहना चाहिए। आयोग बच्चे के मूल्यांकन और परीक्षा दोनों में शिक्षक की महती भूमिका मानते हुए उस पर भरोसा रखने की सिफारिश करता है। साथ ही बच्चे का अंक प्रतिशत देने के स्थान पर हर्टोग रिपोर्ट में प्रस्तावित 'ए', 'बी', 'सी', 'डी', व 'ई' पांच स्केल पर अंकन की सिफारिश करता है। उस समय आयोग ने बच्चे को 'फेल' करार देने के स्थान पर 'फिर से उसी कक्षा में' भेजने जैसी किसी शब्दावली को अपनाने की बात की थी। इसमें तीन पूरक परीक्षाओं की संस्तुति की गई है। नोर्वुड कमेटी रिपोर्ट (1941, पृ. 32) का संदर्भ देते हुए स्कूल प्रमाण-पत्र को भी एक प्रामाणिक दस्तावेज मानने की सिफारिश की गई है।

कोठारी आयोग

कोठारी आयोग (1964-66) मूल्यांकन के नए कार्यक्रम की शुरुआत में ही कहता है, 'भारत में परीक्षा की बुराइयां जगजाहिर हैं।' वैसे देश में राष्ट्रीय स्तर पर बने शिक्षा आयोगों और समितियों में कोठारी आयोग की खास प्रतिष्ठा है। इस रिपोर्ट में आयोग ने शैक्षिक मूल्यांकन और परीक्षा को शिक्षण प्रक्रिया के अन्य उपागमों की संगति में देखा है। उनके अनुसार मूल्यांकन शिक्षा के उद्देश्यों से निर्धारित होना चाहिए। यही नहीं इसे शिक्षण-विधियों की निरंतरता में देखा गया है। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में मूल्यांकन से पहले वाले हिस्से में शिक्षण पद्धतियों और शैक्षणिक मार्गदर्शन पर विस्तृत चर्चा की है।

शिक्षा परिदृश्य में आयोग क्रांतिकारी बदलाव को लक्षित करता है। प्रारंभिक शिक्षा को इसलिए अहम् माना गया है कि यह बच्चे के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की अन्तर्निहित शक्तियों को आकार देती है। आयोग के समय तक शहरी स्कूलों के शिक्षण में दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग होने लगा था और दिल्ली के कुछ स्कूलों में कम्प्यूटर का भी इस्तेमाल हो रहा था। लेकिन ग्रामीण स्कूलों की दुरावस्था से आयोग अनभिज्ञ नहीं था, जहां पढ़ाई सिर्फ मौखिक निर्देशों पर आधारित थी। इस समय तक हिन्दी देवनागरी लिपि मानक स्वरूप नहीं ले पाई थी। ऐसे में आयोग का

यह स्वीकार करना स्वभाविक ही था कि शिक्षा को पहल, सृजनात्मकता और प्रयोगों को प्रोत्साहित करने के लिहाज से नियोजित नहीं किया गया है।

कोठारी आयोग शैक्षणिक जड़ता की स्थिति के विरुद्ध लचीलेपन और गतिशीलता की वकालत करता है। आयोग शिक्षा की बुनियादी इकाइयों- शिक्षार्थी, शिक्षक और स्कूल को स्वायत्तता दिए जाने का समर्थक है। आयोग का शैक्षणिक नवाचार और प्रयोगों पर बहुत जोर है। इनके केन्द्र में शिक्षक की भूमिका को देखा गया है। आयोग दृढ़ता से कहता है कि हमें खतरा उठाकर भी शिक्षक में विश्वास रखना होगा (पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों और स्कूल की अकादमिक गतिविधियों में शिक्षक और शिक्षक समूह के लिए आयोग ने अनेक संभावनाएं खोली हैं।

इसी क्रम में मूल्यांकन पर विचार करते हुए इसे नए नजरिए से देखने की बात कही गई है। उस समय तक राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) और राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी.बी.एस.ई.) अस्तित्व में आ चुके थे। राज्यों में भी ऐसी संस्थाएं खड़ी हो रही थीं। 1958 में भारत सरकार द्वारा केन्द्रीय परीक्षा इकाई की स्थापना की थी। आयोग इन सभी कार्यवाहियों को देश में चल रहे शैक्षिक आन्दोलन के रूप में देखता है। आयोग द्वारा मूल्यांकन को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा गया है जो कि शिक्षा की समग्र प्रणाली का अविभाज्य हिस्सा है और शिक्षा के उद्देश्यों से संबद्ध है। इसका बच्चे की सीखने की प्रवृत्तियों और शिक्षक की सिखाने की पद्धतियों से सीधा संबंध है।

आयोग मूल्यांकन की वैधता, प्रामाणिकता, वस्तुपरकता और व्यवहारिकता को अनिवार्य मानता है। आयोग परीक्षा की सबसे बड़ी कमी इसके लिखित स्वरूप को देखता है और अवलोकन, मौखिक परीक्षण तथा व्यवहारिक अभ्यासों को इसके साथ जोड़ने की अभिशंसा करता है। आयोग के अनुसार परीक्षा के पूरे चरित्र को बदलने की जरूरत है। इसने उम्मीद जाहिर की है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना तक हर राज्य का अपना परीक्षा बोर्ड गठित हो जाएगा। उल्लेखनीय है कि कोठारी आयोग परीक्षा के संदर्भ में विकेन्द्रीकरण और स्वायत्तता के सिद्धान्तों को ही अपनी सिफारिशों का आधार बनाता है।

आरंभिक स्तर पर मूल्यांकन की चर्चा करते हुए कोठारी आयोग ने उस समय बच्चे की सीखने की अपनी गति को लक्षित करते हुए उसके प्रति संवेदनशीलता बरतने की बात की थी। आयोग ने शिक्षक के अवलोकनों को महत्त्वपूर्ण मानते हुए बच्चे की प्रगति का समग्र विवरण रखने पर जोर दिया। कोठारी आयोग भी प्रारंभिक शिक्षा के अंत में सिर्फ एक बाह्य परीक्षा की बात करता है। इससे पूर्व के आकलनों को आयोग द्वारा शैक्षणिक सर्वेक्षण कहा गया है। मूल्यांकन और परीक्षा को जिला स्तर तक विकेन्द्रित करते हुए आयोग ऐसी आथोरिटी के गठन का प्रस्ताव करता है। परीक्षा सुधार के संदर्भ में आयोग इन्हें कम औपचारिक बनाने, बच्चे के लिए सहज और समाज के लिए अधिक वैध बनाने का प्रस्ताव करता है। मूल्यांकन या परीक्षा बच्चे के ज्ञान का पता ही न करे बल्कि ज्ञान के प्रयोग करने की क्षमता और इसकी प्रकृति का भी आकलन करे।

आयोग ने पिछले पांच वर्षों के परीक्षा परिणाम का विश्लेषण कर पाया था कि 55 प्रतिशत बच्चे प्रारंभिक और 70 प्रतिशत बच्चे माध्यमिक शिक्षा में असफल रहे थे। आयोग ने माना कि ऐसी असफलता बच्चों में हीन भावना उत्पन्न करती है। इसे देखते हुए परीक्षा के तरीके व अंकन को अधिक संवेदनशील बनाने की अनुशंसा करते हुए परिणाम में उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण की टिप्पणी को प्रयुक्त न करने की सलाह दी थी। आयोग ने स्कूल द्वारा प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने पर जारी किए जाने वाले प्रमाण-पत्र को पर्याप्त अहमियत दिए जाने की अनुशंसा की। साथ ही मूल्यांकन व परीक्षा में नए प्रयोगों और अनुसंधानों के लिए प्रस्ताव किया।

यह विडम्बना जैसा ही लगता है कि कोठारी आयोग की कार्यवाही रिपोर्ट की तरह बनी नई शिक्षा नीति, 1968 में परीक्षा पर एक संक्षिप्त अनुच्छेद है। इसमें कहा गया है कि परीक्षा सुधार का मूल लक्ष्य इसकी विश्वसनीयता और वैधता में सुधार करना होगा। मूल्यांकन को एक सतत प्रक्रिया मानते हुए इसे बच्चे की उपलब्धि का 'प्रमाण' बनाने की जगह इसकी उपलब्धि में गुणात्मक सुधार लाने के लिए प्रयुक्त किया जाएगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 1975

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 1975 में भी कोठारी आयोग की स्थापनाओं को ही दोहराया गया है। मसलन मूल्यांकन का प्रमुख लक्ष्य यह देखना है कि पाठ्यचर्या के निर्धारित उद्देश्यों की किस सीमा तक प्राप्ति हुई है। यह प्रक्रिया स्वभावतः शैक्षिक अनुभवों और शिक्षा की उन विधियों से संबद्ध है जो सीखने की प्रक्रिया में प्रयुक्त की गई हों। मूल्यांकन को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विश्वसनीय और ठोस प्रमाण देने वाला होना चाहिए। यह लिखित, प्रायोगिक और मौखिक परीक्षाओं, निरीक्षण, स्तरीकरण इत्यादि विभिन्न साधनों और तरीकों से होना चाहिए ताकि विभिन्न उद्देश्यों और वस्तु सामग्री से संबद्ध उपलब्धि का मूल्यांकन हो सके। दस्तावेज कहता है कि मूल्यांकन शिक्षक को स्वयं करना चाहिए। मूल्यांकन का तरीका ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थी कंठस्थ करने की प्रवृत्ति न अपनाएं और अपने ज्ञान का उपयोग नई स्थितियों और समस्याओं के समाधान ढूंढ़ने में कर सकें।

इस दस्तावेज की सबसे उल्लेखनीय बात मूल्यांकन प्रक्रिया को समुदाय के बीच ले जाने की है। इसमें प्रत्येक स्कूल द्वारा समुदाय में ऐसी सभाएं करने का प्रस्ताव किया गया है जिसमें समुदाय को बताया जाए कि मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है व विद्यार्थी की शिक्षा और विकास में प्रगति लाने और शिक्षकों द्वारा शिक्षण में सुधार लाने में किस प्रकार उसका उपयोग किया जाता है।

मूल्यांकन और परीक्षा सुधार पर एक उत्तरवर्ती दस्तावेज (एन.सी.ई.एस.ई. 1988) नई शिक्षा नीति में प्रस्तावित न्यूनतम अधिगम स्तरों और इनके मूल्यांकन पर विस्तार से चर्चा करता है। इसमें कोठारी आयोग द्वारा प्रारंभिक (आठवीं कक्षा तक), माध्यमिक (10वीं कक्षा तक) और उच्च माध्यमिक (12वीं कक्षा तक) के स्तर निर्धारण से सहमति जताते हुए इन तीनों स्तरों के लिए अलग-अलग न्यूनतम अधिगम स्तर निर्धारित करने की बात कही गई है। इनके सतत एवं समग्र आंतरिक मूल्यांकन का प्रस्ताव किया गया है। इस दस्तावेज में परीक्षा का उद्देश्य बच्चे की श्रेणी का निर्धारण करना है। नई शिक्षा नीति (1986) में दक्षता आधारित न्यूनतम अधिगम स्तरों के लिए दिशा-निर्देश जारी करने का काम राष्ट्रीय, (सी.बी.एस.ई.-एन.सी.ई.आर.टी.) राज्य (स्टेट बोर्ड और एस.सी.ई.आर.टी.) तथा जिला (डाइट) स्तर पर निर्धारित कर दिया गया था। मूल्यांकन प्रक्रिया भी इन्हीं से संबद्ध थी।

परीक्षा को लेकर दस्तावेज सुझाता है कि इससे अटकलबाजी और व्यक्तिपरकता को कम किया जाए, स्मृति पर निर्भरता को समाप्त किया जाए। परीक्षा को विषय आधारित संकीर्णता से बच्चे की समझ और दृष्टि तक विस्तारित करने की बात कही गई है। परीक्षा के प्रबंधकीय पहलुओं की स्थिति पर चिंता जताते हुए 'खुली' पुस्तक से परीक्षा की ओर बढ़ने का रास्ता प्रस्तावित किया गया है।

यशपाल समिति रिपोर्ट

भारत में शिक्षा की परीक्षा प्रणाली पर सबसे तीखी आलोचना यशपाल समिति (1992-93) की रिपोर्ट है। इससे पहले 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू हो चुकी थी जिसने न्यूनतम अधिगम स्तर पर आधारित शिक्षण प्रक्रिया को देश भर में विस्तारित कर दिया था। 1990 तक एनसीईआरटी और राज्यों की एससीईआरटी दक्षता आधारित न्यूनतम अधिगम स्तरों को लेकर पाठ्यपुस्तकों का निर्माण कर चुकी थीं। स्कूली स्तर पर इन्हें सतत एवं समग्र मूल्यांकन प्रक्रिया से जोड़ा जा चुका था। 1992 में राज्यों के परीक्षा बोर्डों ने नवीं से बारहवीं तक के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर पर आधारित परीक्षाओं का खाका तैयार कर लिया था।

यशपाल समिति परीक्षा प्रणाली की सबसे बड़ी कमी के रूप में इसकी सूचना व तथ्य निर्भरता को पाती है। यह बच्चे की सूचना व तथ्य के पुनरुत्पादन की क्षमता का आकलन करती है, न कि बच्चे द्वारा इन सूचनाओं और तथ्यों को किन्हीं नई स्थितियों में प्रयुक्त करने की क्षमताओं का परीक्षण। रिपोर्ट के अनुसार परीक्षाएं ऐसा वातावरण निर्मित कर देती हैं जिसमें बच्चे, अभिभावक और शिक्षक आतंकित रहते हैं। चूंकि दसवीं और बारहवीं की परीक्षा में प्राप्त

श्रेणियां और प्रतिशत बच्चे के कैरियर को प्रभावित करते हैं इसलिए परीक्षाओं के इर्द-गिर्द मुनाफे आधारित कारोबार पनप गए हैं। पाठ्यपुस्तकों के साथ कुंजियों और गाइडों का कारोबार ऐसा ही उद्यम है। ऐसी स्थिति में, यशपाल समिति परीक्षा में संरचनागत और प्रक्रियात्मक बदलाव प्रस्तावित करती है।

बस्ते के बोझ का सह-संबंध समिति परीक्षा के साथ देखती है। पाठ्यपुस्तकों की सख्त समीक्षा करते हुए समिति इन्हें सूचनाओं और तथ्यों का नीरस संकलन पाती है। बच्चों को इन्हें परीक्षाओं के लिए अपने मस्तिष्क में ठूंसना पड़ता है और वहां कागज पर उतारना होता है। समिति इसे दिमाग में ठूंसने की बात इसलिए कहती है कि बच्चा इन सूचनाओं और तथ्यों का वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं देख पाता है। ग्रामीण और शहरी गरीब बच्चों के संदर्भ में तो यह स्थिति और भी यातनादायी हो जाती है। समिति ने पाया कि पाठ्यपुस्तकों में आई सूचनाओं और तथ्यों के संदर्भ शहरी मध्यमवर्ग से संबंधित हैं। ग्रामीण व शहरी गरीब बच्चा तो इन चीजों से परिचित ही नहीं होता। तब उसके लिए इन्हें परीक्षाओं हेतु याद रख पाना भी और मुश्किल हो जाता है। यशपाल समिति इस समय अपनी रिपोर्ट में 'झाड़ू' का उदाहरण देते हुए इसके माध्यम से सीखने की कई चीजों को संभावित बताती है जबकि पाठ्यपुस्तकों में घरेलू उपकरणों का उल्लेख होते हुए भी कहीं झाड़ू को शामिल नहीं किया गया है। शायद इसे एक हीन प्रतीक माना गया है।

प्रश्न पत्र की संरचना और इसके पीछे की तार्किकता के संबंध में समिति एक उदाहरण प्रस्तुत करती है। 'सड़क भी एक खेल का मैदान है' इस वाक्य को परीक्षक की दृष्टि से गलत माना जाएगा क्योंकि बच्चों के लिए सड़क पर खेलना जोखिम भरा है। जबकि यह सच्चाई है कि देश में लाखों बच्चे सड़क और गलियों में खेलते हैं। परीक्षा सुधार के संबंध में यशपाल समिति की एकमात्र अनुशंसा है कि इसे पाठ्यपुस्तक आधारित और 'पहेलीनुमा' न होकर अवधारणा आधारित होना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2000

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2000 में शिक्षा के उद्देश्य को कुछ संकुचन परिलक्षित होता है। मूल्यांकन को भी उद्देश्यों के साथ जोड़कर देखा गया है कि 'वह शिक्षार्थी को एक जिम्मेदार और उत्पादक नागरिक की तरह विकसित होने के काबिल बनाए' और 'उसका शिक्षार्थी समूहों की विशिष्ट स्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार अुनकूलन किया जा सके। तत्कालीन मूल्यांकन प्रणालियों की अपूर्णताओं की चर्चा करते हुए कहा गया है कि '...सह-संज्ञानात्मक आयामों को पूरी तरह से नजरअंदाज या उपेक्षित कर देती है। ...यहां तक कि संज्ञानात्मक क्षेत्रों में भी रटकर याद कर लेने पर तो उसका बहुत जोर रहता है मगर उन योग्यताओं और कौशलों पर बहुत कम ध्यान रहता है जो उच्च मानसिक क्रियाओं, जैसे समस्या निवारण, सृजनात्मक सोच, सारांश बोध, निष्कर्ष, तर्क-वितर्क के लिए आवश्यक है।'

दस्तावेज में परीक्षाओं की आलोचना को भी दोहराया गया है कि ये तो लिखित जांच का ही उपयोग करती हैं। ये बहुविध मूल्यांकन तकनीकों के प्रयोग के अवसर नहीं देती हैं, जैसे- मौखिक, तकनीक, अवलोकन, प्रोजेक्ट, असाइनमेंट आदि। दस्तावेज कार्य योजना (पी.ओ.ए.) 1992 को उद्धृत करता है, बाह्य परीक्षाओं के प्रभाव को कम करना चाहिए। परीक्षा में असफल होने पर बच्चों द्वारा आत्महत्या करने को लेकर गंभीर चिंता जताई गई है।

संक्षेप में, एनसीएफ 2000 का प्रस्ताव बच्चों की तुलनीय योग्यता के महत्त्व को स्वयं विद्यार्थी के संदर्भ में, शिक्षक द्वारा निर्धारित कसौटी के संदर्भ में और अपने ही साथी विद्यार्थियों के बीच योग्यता के मूल्यांकन के संदर्भ में रेखांकित करता है। विषय पर प्रवीणता प्राप्त कराने वाली शिक्षण पद्धति पर कमजोर छात्रों के लिए निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण और कुशाग्र छात्रों के ज्ञान संवर्धन के लिए शिक्षण युक्तियों पर जोर देता है। विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए विभन्न पाइंटों में ग्रेड प्रणाली के प्रयोग का प्रतिपादन करता है। सतत और व्यापक मूल्यांकन करने, उसका रिकॉर्ड रखने और उस पर आधारित रिपोर्ट कार्ड बनाने का प्रस्ताव करता है। माध्यमिक स्तर पर सेमेस्टर प्रणाली का पक्षधर है। आखिर में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और कार्य योजना (1992) द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन का समर्थन करता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005 (एनसीएफ) के आने तक दक्षता आधारित न्यूनतम अधिगम स्तर की शैक्षणिक और मूल्यांकन केन्द्रित सीमाएं देश भर में उजागर हो चुकी थीं। स्वभाविक ही था कि एनसीएफ 2005 इसकी वस्तुपरक आलोचना प्रस्तुत करता। यहां इस आलोचना का उल्लेख इसलिए भी जरूरी है क्योंकि मूल्यांकन और परीक्षा भी इस योजना से संचालित थे। एनसीएफ 2005 में कहा गया है कि न्यूनतम अधिगम स्तर जैसी योजनाओं ने न केवल साल के अंत में आने वाले नतीजों के सख्त पालन पर जोर दिया बल्कि नतीजों को पाठ आधारित करके और संकीर्ण बना दिया। दक्षताओं को लेकर कहा गया कि ये शिक्षण और उससे संबंधित आकलन का ध्यान पाठ्यपुस्तक एवं तथ्ययुक्त विषयवस्तु से दूर ले जाने का एक प्रयास है। परन्तु अधिगम के न्यूनतम स्तर के उपागम में दक्षताओं को विस्तृत उप-दक्षताओं और उप-कौशलों में तोड़ा गया है, यह मानकर कि इनका कुल योग दक्षता है। परन्तु अक्सर व्यवहार और प्रस्तुति पर ध्यान देने से अवधारणाओं के लिए तो जगह ही नहीं बचती। उप-कौशलों के इस तार्किक, लेकिन यांत्रिक सूचीकरण से और उनकी उपलब्धि के लिए बनाई गई सख्त समय-सारणी से, कहीं भी यह नहीं झलकता है कि जिस चक्र में दक्षताएं सीखी जाती हैं जरूरी नहीं है कि वे निर्धारित समय और गति के अुनसार ही सीखी जाएंगी। यह सरोकार भी कहीं प्रतिबिम्बित नहीं होता कि समग्र, दरअसल विभिन्न भागों के जोड़ से ज्यादा भी हो सकता है। इस विस्तृत सूची के लिए अधिगम और परीक्षण के विषयों की सूची बनाना और पूर्व-निर्धारित अधिगम के परिणामों के लिए पढ़ाना बिल्कुल ही अव्यवहारिक है और शिक्षाशास्त्रीय नजर से अविश्वसनीय भी है।

शिक्षार्थियों के आकलन के संदर्भ में एनसीएफ 2005 कहता है कि पाठ्यपुस्तक आधारित अधिगम और रटे हुए वाक्यों को जांचने वाले परीक्षण, दोनों ही बेकार हैं। दस्तावेज स्वीकार करता है कि पाठ्यचर्या के सभी विषय परीक्षा द्वारा नहीं जांचे जा सकते। यह भी कि अंक बिना दिए भी बच्चों का इन क्षेत्रों में विकास के लिए आकलन किया जा सकता है। भागीदारी, रुचि और जुड़ाव तथा जिस स्तर तक क्षमताओं एवं कौशलों का विकास हुआ, ये कुछ सूचक हैं जिनके आधार पर शिक्षक यह समझ बना सकते हैं कि बच्चों को किन्हीं गतिविधियों से कितना फायदा हुआ है। बच्चों को खुद बताने के लिए कहा जाए तो उससे भी मूल्यांकन के लिए एक अन्तर्दृष्टि विकसित होगी।

एनसीएफ 2005 की सिफारिश है कि आकलन और परीक्षाओं को विश्वसनीय होना चाहिए एवं अधिगम को मापने के वैध तरीकों पर आधारित होना चाहिए। इसके अनुसार अच्छे प्रश्न और परीक्षा-पत्र बनाना भी एक कला है और शिक्षकों को ऐसे प्रश्न बनाने पर बल देने की जरूरत है। साथ में, खुली पुस्तक परीक्षा-पत्र बनाना भी एक चुनौती है जिसे स्कूल प्रत्येक स्तर के पाठ्यचर्या प्रयासों में शामिल करना चाहिए। अंक और स्पर्द्धा केन्द्रित मूल्यांकन का कक्षा की संस्कृति पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि बच्चे व्यक्तिवादी बनते हैं और सामूहिक कार्य करने की क्षमता खो बैठते हैं। 'परीक्षा' को बिल्कुल असंगत महत्त्व दिया जाता है और उन पर अनावश्यक ध्यान केन्द्रित किया जाता है जिसमें अक्सर गोपनीयता और निरीक्षण की सख्त व्यवस्था की जाती है। एनसीएफ 2005 में सतत व समावेशी मूल्यांकन को ही एक सार्थक मूल्यांकन माना गया है।

एनसीएफ 2005 के समानान्तर ही परीक्षा प्रणाली में सुधार पर राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र जारी किया गया था। इसकी अनुशंसाओं को ही बाद में सीबीएसई बोर्ड द्वारा लागू किया गया। इसकी कुछ सिफारिशें शिक्षा का अधिकार कानून 2009 में शामिल की गईं जिनमें आठवीं कक्षा तक किसी बच्चे को फेल नहीं करना और परीक्षा के स्थान पर सतत एवं समग्र मूल्यांकन का प्रावधान है। दसवीं बोर्ड परीक्षा को ऐच्छिक करने और परिणाम को ग्रेड आधारित करने जैसी बातें भी इस आधार-पत्र से ही ली गई हैं। इसमें परीक्षा व मूल्यांकन को शिक्षा के अन्य उपागमों की संगति में देखा गया है।

आधार पत्र प्रस्ताव करता है कि आकलन के विविध प्रकारों का उपयोग किया जाना चाहिए जिसमें मौखिक परीक्षण एवं सामूहिक कार्य मूल्यांकन भी शामिल होने चाहिएं। प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक विषय की पूरी जानकारी की अपेक्षा उचित नहीं है। और यह कहना कठिन है कि शिक्षा में योग्यता एक सापेक्षिक विचार नहीं है।

आधार पत्र की मान्यता है कि परीक्षाएं, तंत्र की सुविधा के लिए निर्मित कृत्रिम परिस्थितियां हैं, न कि व्यक्तिगत शिक्षार्थी के लिए। 'हम इस चिंता को स्वयं रोग के रूप के बजाय, परीक्षाओं से पीड़ित रूग्णता के चिह्न के रूप में देखते हैं'। ऐसा मानते हुए समूह ने यशपाल समिति की एक धारणा को उद्धृत किया है। इसमें यह मानते हुए कि शिक्षा पार्श्विक बंध बनाती है, कहा गया है, 'मस्तिष्क में ज्ञान की परिस्थिति की रचना करती है तो ऐसे प्रश्न निश्चित रूप से आवश्यक हैं जो अवधारणाओं पर आधारित हों। आधार पत्र 'अनुत्तीर्ण' शब्द बंध के पूरी तरह निष्कासन की अनुशंसा करता है। 'परीक्षाएं बुराई हैं' इस सिद्धांत को मानते हुए कहा गया है कि 'जहां अत्यंत आवश्यक न हो वहां कोई परीक्षा नहीं' होनी चाहिए। दसवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षाएं तुरंत ऐच्छिक बना देनी चाहिएं।

आधार पत्र कहता है कि शिक्षकों के पुनः सशक्तिकरण व बोर्ड के निःशक्तिकरण के प्रयास होने चाहिएं, न कि शिक्षा प्रणाली में आए बोर्डों की शक्ति के विस्तार के। समूह बच्चे के परिवेश को उसकी उपलब्धि के सह-संबंध में देखता है। कहा गया है, क्या हम ईमानदारी पूर्वक कह सकते हैं कि दो विद्यार्थी, जिन्होंने 75 प्रतिशत अंक प्राप्त किए हैं, लेकिन एक विद्यार्थी दक्षिण मुम्बई के एक स्कूल में पढ़ा है और दूसरा ग्रामीण क्षेत्र के एक स्कूल में, समान योग्यता वाले हैं? क्या ग्रामीण विद्यार्थी को व्यवस्थागत बड़ी विषमताओं को नहीं पार करना पड़ा होगा?

समूह दृढ़तापूर्वक महसूस करता है कि (क) बच्चों पर से दबाव कम करने (ख) मूल्यांकन को व्यापक और नियमित बनाने (ग) शिक्षकों को रचनात्मक शिक्षण का अवसर देने (घ) निदान के लिए साधन उपलब्ध कराने और श्रेष्टतर योग्यता वाले विद्यार्थियों को तैयार करने के लिए स्कूल आधारित सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) व्यवस्था स्थापित हो। समूह का मानना है कि मूल्यांकन को कम दोषपूर्ण बनाया जाए। भारत में बोर्ड परीक्षाओं के पुनर्परीक्षण की गंभीर जरूरत है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में पूंछ (मूल्यांकन) ने कुत्ते (अधिगम और अध्यापन) को हिलाया है न कि कुत्ते ने पूंछ को।

राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र को जारी हुए भी एक दशक होने जा रहा है। इस दौरान शिक्षा के अधिकार अधिनियम की क्रियान्विति को अर्द्ध दशक हो रहा है। आठवीं तक बच्चों का अनुत्तीर्ण न करने ने स्कूली शिक्षा में भयानक अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर दी है क्योंकि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की किसी प्रणाली में स्कूलों में प्रभावी जगह नहीं बनाई है। ग्रेड देने और बोर्ड परीक्षा को ऐच्छिक करने पर मीडिया में बहस शुरू हो गई है। राष्ट्रीय और राज्यों के स्तर पर परीक्षा अभी भी यक्ष प्रश्न बनकर खड़ी हैं जिसका कोई सर्व स्वीकृत और सार्थक समाधान कहीं दिखता नजर नहीं आ रहा। शिक्षा पर राष्ट्रीय दस्तावेज भी एक ही केन्द्र में घूर्णन करते प्रतीत होते हैं। ◆

संदर्भः

1. मुदालियार समिति रिपोर्ट, 1952-53
2. कोठारी आयोग रिपोर्ट, 1964-66
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968
4. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 1975
5. एनसीईएसई, 1988
6. यशपाल समिति रिपोर्ट, 1992-93
7. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2000
8. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005
9. परीक्षा प्रणाली में सुधार पर राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, 2005

लेखक परिचयः द्वैमासिक 'संस्कृति मीमांसा' के संपादक, स्वयंसेवी संगठन समान्तर 'सेन्टर फॉर कल्चरल एक्शन एण्ड रिसर्च' के कार्यकारी निदेशक (मानद) हैं।